शोध मंथन Vol. XVI No.I Jan.- Mar. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.877 (SJIF)

अगरिया जनजाति का लौह प्रगलन और धातुकर्मः वर्तमान चुनौतियां एवं संभावनाएं

प्राप्तिः 05.03.2025
स्वीकृतः 22.03.2025

संजय यादव
सहायक आचार्य (जनजातीय अध्ययन)
कला, संस्कृत एवं लोक साहित्य विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय (म.प्र.)
ईमेलः drsy94@gmail.com

24

सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप धातुकर्मियों, पुरातत्वविदों और अपनी बौद्धिकता के साथ–साथ प्राचीन लौह निर्माण तकनीकी विरासत के लिए विश्व के आकर्षण का केंद्र रहा है। महरौली का लौह स्तम्भ आज भी अपनी श्रेष्टता और शुद्धता का प्रमाण लिए खड़ा है। परिवर्तन के इस काल में भी ग्रामीण भारत अपनी सदियों पुरानी कला और हस्त–कौशल को अपने पुरखों की धरोहर समझ कर अपनी बहुमूल्य थाती के रूप में संजोकर रखा है। सृजन का यह तरीका आज भी सुरक्षित और संरक्षित है। सृजन की इस परम्परा को अगरिया जनजाति विशेष रूप से सुरक्षित रखी है। अगरिया जनजाति वैदिक काल से लौह प्रगलन की अपनी पारंपरिक तकनीक से विभिन्न प्रकार के लौह उत्पादों में विशेषज्ञ है। अगरिया जनजाति लोहा गलाने में सिद्धहस्त है। लोहा गलाने की उनकी तकनीकी उनकी आजीविका का साधन भी है और परम्परा का संरक्षण भी। लोहा गलाने की समृद्ध तकनीक के कारण अगरिया जनजाति को वैज्ञानिक जनजाति के नाम से जाना जाता है। यह जनजाति जंग रहित लोहा बनाने के लिए विश्व प्रसिद्ध है। अगरिया का शाब्दिक अर्थ होता है, आग से खेलने वाला। यह जनजाति अपनी तकनीकी में इतनी सिद्धहस्त है कि अपनी शरीर पर पड़ने वाले लोहे के ताप से ही उसके तापमान का अनुमान लगा लेती है और उस पर हथौड़े का प्रहार कर उसे अपने मन पसंद का आकार देते हैं। लोहे का यह आकार उनके जीवन को आकार देता है क्योंकि यही उनकी आजीविका का साधन है। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि अगरिया जनजाति का लोहा पर्शिया और रोम तक जाता था। यह जनजाति प्राकृतिक संतुलन को ध्यान में रखकर लौह प्रगलन का कार्य करती है। लौह प्रगलन अगरिया जनजाति के लिए सांस्कृतिक और आर्थिक महत्व रखता है।

मुख्य शब्द

प्रगलन, अयस्क, भाथी, औजार, औद्योगीकरण।

शोध प्राविधि एवं उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है। शोध पत्र को पूर्णता प्रदान करने के लिए ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पद्धतियों का अवलंब लिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र अगरिया जनजाति के लौह प्रगल एवं धातु कौशल की चुनौतियां, संभावनाएं एवं सुझाव पर केंद्रित है।

परिचय

अगरिया जनजाति भारत की आदिम जनजाति में सम्मिलित है। यह भारत के विभिन्न राज्यों में पायी जाती है। किन्तु यह जनजाति विशेष रूप से मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखंड में पायी जाने वाली एक पारंपरिक जनजाति है। मध्य प्रदेश के मंडला, डिंडोरी, बालाघाट, रीवा और सीधी जिला तथा छत्तीसगढ़ के बिलासपुर, कवर्धा और रायगढ़ जिले में आवासित हैं (रसेल, 1969)। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार, छत्तीसगढ़ में अगरिया जनजाति की कुल जनसंख्या 54,574 थी, जिसमें पुरुषों की संख्या 27,192 तथा महिलाओं की संख्या 27,382 थी। 2001 की जनगणना के अनुसार इनका लिंगानुपात 1007 था (जनगणना, 2001)। जनगणना 2011 के अनुसार इनकी संख्या में वृद्धि देखी गयी। इनकी जनसंख्या 67,196 है, जिसमें पुरुष 33,384 तथा 33,812 महिलायें (लिंगानुपात–1013) हैं (जनगणना, 2011)। अगरिया जनजाति का लिंगानुपात यह दर्शाता है कि इनमें भ्रूण–हत्या जैसे आधुनिक अमानवीय प्रवृत्ति नहीं है। मध्य प्रदेश में इनकी जनसंख्या 41,243 है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 0.057% है। जनगणना 2011 के अनुसार अगरिया जनजाति की साक्षरता दर 30 प्रतिशत से भी कम है, जो सम्पूर्ण भारत की जनजातीय साक्षरता से बहुत कम है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त अगरिया जनजाति बिहार, झारखण्ड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भी पायी जाती है। उत्तर प्रदेश सोनभद्र एवं मिर्जापुर जिले में इनकी संख्या अधिक है।

अगरिया जनजाति का इतिहास धातुकर्म से अन्योनाश्रित रूप से संबधित है। आग और लोहे की खोज मानव सभ्यता की सबसे बड़ी उपलब्धि है। लोहे ने मानव को हल के फाल, कुल्हाड़ी और गाड़ी के पहिये दिए जिससे मानव विकास की नयी यात्रा पर निकला। परन्तु अयस्क से शुद्ध लोहे को पृथक कर उपयोगी बनाने की तकनीक तक पहुँचाना अतिशय श्रमसाध्य और दीर्घकालिक अनुभव रहा होगा। अगरिया उन्हीं आदिम जनजातियों की वंशज है जिसने अयस्क से शुद्ध लोहे को अलग कर, उसे उपयोगी, अनुष्ठानिक और सौन्दर्यपरक बनाने की कला का विकास किया।

यह जनजाति विशेष रूप से लौह प्रगलन (Iron Smelting) की अपनी परंपरागत विधि के लिए वैश्विक फलक पर प्रसिद्ध है। लौह धातु प्रगलन और शिल्पकला इनका मुख्य व्यवसाय है। इनके पास लोहा गलाने तथा शिल्पकला की स्वदेशी तकनीक है, जो इनके पूर्वजों द्वारा विकसित और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित है। अगरिया जनजाति का लौह प्रगलन केवल एक आर्थिक गतिविधि ही नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संरचना और आजीविका का महत्वपूर्ण अंग भी है।

बहुधा एक गांव में एक अगरिया परिवार पाया जाता है। कहीं–कहीं इनकी बस्तियां पायी भी जाती हैं। यह जनजाति पारंपरिक रूप से कुटीर उद्योग और कृषि पर निर्भर रही है, लेकिन इनकी मुख्य पहचान लौह प्रगलन कार्य से जुड़ी हुई है। अगरिया जनजाति हिंदी भाषा के साथ छत्तीसगढ़ी बोली भी बोलते हैं। किम्वदंतियों में ही इनके उत्पत्ति का प्रमाण मिलता है। यह जनजाति लोहासुर से अपनी उत्पत्ति मानती है। ये लोग लोहासुर (लोहा) और अग्यासुर (अग्नि) को अपना देवता मानते हैं। सूर्य के अतिरिक्त सभी हिंदू देवी देवताओं में आस्था रखते हैं। वेरियर एल्विन अपनी पुस्तक 'द अगरिया' में लिखते हैं कि–''अगरिया और असुर उसी आदिवासी समूह के वशंज हैं जिनका उल्लेख संस्कृत धार्मिक ग्रंथों में असुरों के रूप में मिलता है'' (एल्विन, 1942)।

अगरिया जनजाति की आजीविका

औद्योगिक क्रांति ने औद्योगिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन किया। औद्योगीकरण ने विनिर्माण, परिवहन, वित्त और संचार उद्योग में वृद्धि के साथ उत्पादन क्षमता का भी विस्तार किया, परन्तु इसके नकारात्मक प्रभाव भी व्यापक रहा। वस्तुतः अंग्रेजों के आगमन के बाद ही भारतीय अर्थव्यवस्था प्रभावित होने लगी थी। अगरिया जनजाति की आजीविका मुख्य रूप से लौह प्रगलन पर आधारित थी, लेकिन आधुनिक औद्योगीकरण और सरकारी नीतियों के कारण यह परंपरा धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। अगरिया जनजाति का लौह प्रगलन, धातुकर्म और हस्त कौशल समाप्त हो रहा है। आज इनकी आजीविका के मुख्य स्त्रोत निम्नलिखित हैंः

लौह प्रगलन और कुटीर उद्योग– कुछ परिवार अभी भी पारंपरिक लौह प्रगलन का कार्य करते हैं। लौह निर्मित वस्तुओं को बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। कुछ अगरिया जनजाति टोकरी बनाने का कार्य भी करती है। महिलाएं अन्य कार्यों के अतिरिक्त टोकरी बनाती हैं।

कृषि और पशुपालन– कृषि और पशुपालन भी अगरिया जनजाति के आजीविका का साधन है। कई अगरिया लोग अब कृषि और पशुपालन से अपनी आजीविका चला रहे हैं। यद्यपि की खेती से इनका बहुत कम लगाव रहता है, फिर भी खेती का कार्य करते हैं। उत्तर प्रदेश के सोनभद्र और मध्य प्रदेश के सीधी और रीवा जिले में निवास करने वाले अगरिया पशुपालन और कृषि करते हैं। इनकी कृषि आज भी उन्नत किस्म की नहीं है।

श्रमिक कार्य– आधुनिक पीढ़ी के नवयुवक अब शहरों की ओर पलायन करके उद्योगों में श्रमिक के रूप में कार्य करना, खासकर खनन और निर्माण कार्यों में अपनी आजीविका तलाश रहे हैं।

सरकारी योजनाओं का लाभ– अगरिया जनजाति के लोग सरकार द्वारा चलायी जा रही रोजगार योजनाओं और मनरेगा जैसी योजनाओं में अपनी भागीदारी कर रहें हैं। सरकारी योजनाओं में इन्हें वर्षभर का रोजगार नहीं मिलता है। एक तरह से इनमें मौसमी बेरोजगारी बनी रहती है।

लौह प्रगलन की पारंपरिक प्रक्रिया

अगरिया जनजाति द्वारा अपनायी जाने वाली लौह प्रगलन की प्रक्रिया अत्यंत पारंपरिक और प्राचीन है। इनकी लोहा गलाने वाली भट्ठी रात में ही जलती है। ये लोग सूर्य को अपना शत्रु मानते हैं, जिसका मूल कारण यह है कि सूर्य के ताप के कारण भट्ठी का ताप सहन करना कठिन होता है। लौह प्रगलन से लेकर वास्तु निर्माण तक इसमें निम्नलिखित चरण शामिल हैंः–

खनिज लौह अयस्क का संग्रहण– अगरिया जनजाति द्वारा पहाड़ों से कच्चे लौह अयस्क (Iron Ore) को इकट्ठा किया जाता है। ये बहुधा मैकल पर्वत श्रृंखला से लौह अयस्क प्राप्त करते हैं। अच्छे और गुणवतापूर्ण लौह अयस्क के पहचान में यह जनजाति निपुण होती है। ये लोग अपने क्षेत्रीय बोली में लौह अयस्क को कई नाम देते हैं उनकी गुणवत्ता के आधार पर उनका वर्गीकरण कर लेते हैं। बेचारा (Bechara), चावरिया (Chawria) और पोंदो (Pondo) को अच्छा लौह अयस्क की श्रेणी में रखते हैं। पहले ये लोग पहाड़ों और पत्थरों से लौह अयस्क प्राप्त करते थे। आजकल बाजार में कबाड़ की दुकानों से लोहा खरीद लेते हैं और उसे ही प्रयोग में लाते हैं। बाजार से प्राप्त लोहे में वह गुणवत्ता नहीं होती है, लेकिन ये लोग निर्माण के बाद उसे भी जंगरहित रहने का दावा करते हैं।

भट्ठी निर्माण– धौंकनी अथवा भट्ठी के निर्माण के आधार पर अगरिया समुदाय का दो वर्गीकरण किया जाता है–एक पथरिया और दूसरा खुंटिया (वर्मा, 2018)। मिट्टी और पत्थर की सहायता से पारंपरिक भट्टियों (Furnaces) का निर्माण किया जाता है। इसे भट्ठी अथवा कोथा (Kotha) कहते हैं। उत्तर प्रदेश में लोहे का काम करने वाले इसे 'भाथी' कहते हैं। इसकी ऊंचाई तीन फीट होती है। धौंकनी प्रायः जानवरों के चर्म से बनायी जाती है। हवा फुकने वाले इस हिस्से को छत्तीसगढ़ के क्षेत्रीय बोली में चपुआ (Chapua) कहते हैं।

कोयले की प्राप्ति– अगरिया जनजाति प्रायः लकड़ी से कोयला बनाकर उसे भट्टी में ईंधन के रूप में उपयोग करती थी। सूखे हुए साल या सरई की लकड़ी का कोयला विशेष उपयोगी होता है। इसमें इमली के वृक्ष (Tamarindus Indica) की लकड़ी का कोयला भी उपयोगी माना जाता था। अगरिया जनजाति यह कोयला स्वयं बनती थी (शर्मा, 2020)। अब लकड़ी के कोयले की जगह बाजार में उपलब्ध कोयले का प्रयोग अधिक किया जाता है। लकड़ी का कोयला इनके स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के अनुकूल होता था जबकि बाजार से प्राप्त कोयला इनके स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए घातक है।

अयस्क गलाना– लौह प्रगलन का कार्य धार्मिक विधानपूर्वक देवी देवताओं के पूजा के उपरांत ही किया जाता है। उच्च तापमान पर अयस्क को गलाकर शुद्ध लोहे का निर्माण किया जाता है। यह अतिश्य कठिन कार्य होता है। आठ से दस किलो अयस्क को चार से छ घंटा उच्च ताप पर गर्म करके 1.5 अथवा 2 किग्रा लोहा प्राप्त किया जाता है। इस लोहे को अगरिया जनजाति कुवारी लोहा (Kuwari Loha) कहती है (सिंह, 2015)।

लोहे का उपयोग– लौह प्रगलन के बाद प्राप्त लोहे का उपयोग अगरिया जनजाति द्वारा कृषि उपकरण, हथियार व अन्य घरेलू उपयोगी वस्तुएं बनाने में किया जाता है। इस लोहे से ये लोग दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी बनाते हैं (मिश्र, 2016)।

अगरिया जनजाति की लौह धातु शिल्प परंपरा का संरक्षण

अगरिया जनजाति की लौह धातु शिल्प परंपरा एक अमूल्य धरोहर है, जिसे संरक्षित करना आवश्यक है। औद्योगीकरण ने समाज को कृषि अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था में बदल दिया। अधिक उत्पादन की महत्वाकांक्षा ने छोटे और कुटीर उद्योगों को समाप्त कर दिया। औद्योगीकरण और बढ़ते शहरीकरण के कारण अगरिया जनजाति का पारंपरिक लौह शिल्प संकट में है (झा, 2017)। इसे बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:

सरकारी संरक्षण योजनायें– अगरिया जनजाति की धातु शिल्प परंपरा को संरक्षित करने के लिए सरकार को विशेष योजनायें बनानी चाहिए। इसके तहत वित्तीय सहायता, तकनीकी प्रशिक्षण और विपणन सहयोग दिया जा सकता है।

हस्तशिल्प एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा– अगरिया जनजाति द्वारा निर्मित पारंपरिक औजारों, हथियारों और कलात्मक वस्तुओं को बाजार से उपलब्ध कराया जाए, जिससे उनकी धातु कौशल एवं शिल्पकला को संरक्षण मिले।

शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम– पारंपरिक लौह धातु कर्म की तकनीक को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। इससे युवा पीढ़ी इस कला में रुचि

लेगी और इसे अपनाने के लिए प्रेरित होगी। साथ ही साथ इसे रोजगारपरक प्रशिक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। जब हाथ के हुनर को आर्थिक गतिविधि से जोड़ा जायेगा तो इसमें त्वरित गति से विकास की संभावना बढ़ जाएगी।

पर्यटन एवं सांस्कृतिक महोत्सव– अगरिया जनजाति की धातुकर्म के परंपरागत ज्ञान को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने के लिए पर्यटन और सांस्कृतिक महोत्सवों का आयोजन किया जा सकता है। इससे उनकी कला को नई पहचान मिलेगी और आर्थिक लाभ भी होगा।

सहकारी समितियों का गठन– अगरिया समुदाय के कारीगरों को संगठित करने के लिए सहकारी समितियां बनाई जाए, जिससे वे अपने उत्पादों को उचित मूल्य पर बेच सकें और बिचौलियों से बच सकें। उनकी मेहनत और मजदूरी का अधिकांश हिस्सा बिचौलियों के हाथ लग जाता है।

इंटरनेट और ई–कॉमर्स का उपयोग– पारंपरिक शिल्प उत्पादों को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराना भी एक सार्थक प्रयास हो सकता है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से सामानों को बेचना एक अच्छा उपाया हो सकता है। इससे अगरिया जनजाति के उत्पादों को वैश्विक बाजार में स्थान मिल सकता है। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार की व्यापक संभावनाएं बढ़ जाएंगी।

संरक्षण नीतियां और कानूनी समर्थन– शासकों, प्रशासकों और नीति निर्माताओं को नीति निर्माण तथा उसके क्रियान्यन के समय सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। सरकार को चाहिए कि वह पारंपरिक धातु शिल्प उद्योग को संरक्षित करने के लिए विशेष कानून बनाए, जिससे यह कला विलुप्त होने से बच सके।

संशोधित तकनीकों का समावेश– पारंपरिक लौह प्रगलन तकनीकों में सुधार करके उन्हें अधिक पर्यावरण अनुकूल और उत्पादक बनाया जा सकता है। इसके लिए आधुनिक विज्ञान और पारंपरिक ज्ञान का समन्वय किया जाना चाहिए। अधुनातन और पुरातन का वैज्ञानिक समन्वय पर्यावरण संरक्षण, कारीगर के स्वास्थ्य तथा उत्पादन क्षमता के लिए विशेष उपयोगी होगी (गुप्ता, 2021)।

शैक्षणिक संस्थानों से सहयोग– विद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को अगरिया जनजाति की शिल्प परंपरा पर शोध कार्य करना चाहिए और उनके संरक्षण के लिए सुझाव देने चाहिए।

स्थानीय बाजार और मेला आयोजन– पारंपरिक लोहे के उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय स्तर पर मेले और प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाना चाहिए। सरकारी संरक्षण के साथ निजी क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं को भी इसमें उत्साह के साथ सहयोग करना चाहिए। इससे इस कला को संरक्षण मिलेगा और कारीगरों को रोजगार मिलेगा।

आधुनिक युग में चुनौतियां और संभावनायें

वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव डाले हैं। वैश्वीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में निवेश तथा रोजगार के अवसर अवश्य सृजित किये हैं और इससे देशों के राष्ट्रीय आय में सकारात्मक वृद्धि भी हुई है। परन्तु इसने असमानता को बढ़ावा भी दिया है तथा पारंपरिक संस्कृतियों और हस्त कौशल को घातक हानि पहुँचाया है। साथ ही साथ पर्यावरण को अपूर्णीय क्षति पहुचाया है। कुटीर और लघु उद्योगों को अतिश्य क्षति हुई है (सिंह, 2020)। अगरिया जनजाति के लौह प्रगलन कार्य में गिरावट आने के पीछे कई कारण हैं, जैसेः

- वन अधिकार कानूनों द्वारा जंगलों पर प्रतिबंध और पर्यावरणीय नियम।
- बड़े और आधुनिक स्टील उद्योगों का विकास।
- पारंपरिक ज्ञान के प्रति नयी पीढ़ी में उत्सुकता का आभाव और उसका विलुप्त होना।
- सरकारी नीतियों में बदलाव और दृढ़ संकल्प शक्ति का आभाव।
- वैश्वीकरण और औद्योगीकरण का प्रभाव।

हालांकि उनके संरक्षण और संवर्धन की व्यापक संभावनायें भी मौजूद हैं:

- अगरिया जनजाति की पारंपरिक धातु कला को संरक्षित करने के लिए सरकारी और गैर–सरकारी प्रयास।
- हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग के रूप में पारंपरिक लौह कार्य को बढ़ावा।
- पर्यटन के माध्यम से पारंपरिक धातु कला को प्रस्तुत करना।
- पुराने कारीगरों को प्रशिक्षक के रूप में प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष

अगरिया जनजाति भारत की एक महत्वपूर्ण आदिम जनजाति है, जिसकी पहचान पारंपरिक लौह प्रगलन एवं धातुकर्म से जुड़ी हुई है। लौह प्रगलन और धातु निर्माण की तकनीक में अगरिया जनजाति के कौशल ने उन्हें जापान तक की प्रदर्शनी में पहुँचाया। सन् 1986 में एगाकी एल. ने भारत और जापान के लोहे के संरक्षण प्रतिरोध एवं जंग का तुलनात्मक अध्ययन किया और भारतीय लोहे को उत्तम पाया। आज औद्योगीकरण और वैश्वीकरण के युग में अगरिया जनजाति की परंपरागत आजीविका संकट में है, लेकिन सही योजनाओं और सरकारी समर्थन से इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किया जा सकता है। अगरिया जनजाति के परम्परागत वैज्ञानिक तकनीक और कौशल को सुरक्षित किया जा सकता है। भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा गैर अधिसूचित, घुमक्कड़ और अध्रघुमक्कड़ जनजातियों तक सरकारी योजनाओं का लाभ पहुँचने तथा उनके बहुआयामी विकास के लिए युद्धस्तर पर प्रयास किया जा रहा है। अगरिया जनजाति के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा भू–स्वामित्व योजना और वन अधिकार पट्टा के माध्यम से इनके नियोजन और पुनर्वास की व्यवस्था किया जा रहा जिससे ये बेहतर जीवनयापन कर सकें। सर्कार के इस प्रयास को अन्तिम नहीं माना जा सकता। अगरिया जनजाति की लौह धातु शिल्प परंपरा को बचाने के लिए सरकार, सामाजिक संगठन, शोध संस्थान और स्थानीय समुदायों को मिलकर कार्य करना होगा। इससे न केवल इस प्राचीन कला का संरक्षण होगा, बल्कि अगरिया जनजाति के आर्थिक विकास को भी बढ़ावा मिलेगा। साथ ही अगरिया जनजाति के पारम्परिक पहचान और कौशल को सुरक्षित, संरक्षित एवं संवर्धित करने में सहायता मिलेगी।

संदर्भ

1. रसेल, आर. वी और हीरालाल (1969), द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ द सेंट्रल प्रोविंस ऑफ इंडिया, नागपुरः गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस।
2. जनगणना, 2001 की रिपोर्ट।

3. जनगणना, 2011 की रिपोर्ट।
4. एल्विन, वी. (1942), द अगरिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. वर्मा, एस. पी. (2018), अगरिया जनजाति और उनका लौह शिल्प, पटनाः नेशनल इंस्ट्टियूट ऑफ ट्राइबल रिसर्च।
6. शर्मा, एस. के. (2020), भारतीय जनजातीय अध्ययन, नागपुरः इंडियन अन्थ्रोपोलोजिकल सोसाइटी।
7. सिंह, ए. के. (2015), ट्राइबल आयरन स्मेल्टिंग इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. मिश्र, पी. के. (2016), ट्राइबल इकॉनमी एंड लाइवलीहुड चैलेंजेज, दिल्लीः ज्ञानदा प्रकाशन।
9. झा, एस. सी. (2017), लोक संस्कृति और धातु शिल्प, दिल्लीः साहित्य अकादमी प्रकाशन।
10. गुप्ता, टी. आर. (2021), लौह प्रगलन तकनीक और पर्यावरण प्रभाव, इंडियन जर्नल ऑफ एनवायर्नमेंटल स्टडीज, XXI, (3), 67–71।
11. सिंह, प्रियंका (2020), ट्राइबल आर्ट एंड क्राफ्ट इन इंडिया, दिल्लीः मानस प्रकाशन।